आधुनिक जीवन में श्रमणाचार की महत्ता

डॉ. जीवराज जैन

औद्योगिक क्रान्ति, आधुनिक सूचना तन्त्र तथा बदलते सामाजिक परिवेश के कारण श्रमण-श्रमणियों के आचार-पालन में उत्पन्न कठिनाइयों के कारण श्रमणाचार में यथोचित परिवर्तन की आवाजें उठती हैं। डॉ. जीवराज जैन उन समस्याओं को उठाकर भी अपने आलेख में श्रमणाचार के आगमसम्मत शुद्ध परिपालन को उचित ठहराया है। -सम्पादक

श्रमणाचार के नियम

एक श्रमण संपूर्ण हिंसा का त्यागी होता है। यानी वह छहों काया के जीवों का मन, वचन और काया से रक्षक होता है। वह स्व-कल्याण करते हुए ही पर-कल्याण की बात करता है। अपनी काया (देह) की रक्षा और उसका उपयोग इस भावना से करता है कि वह उसके सहारे अपने पूर्व बद्ध कर्मों का अधिक से अधिक क्षय कर सके। तथा इतनी जागरूकता रखता है कि नये कर्मों का कम से कम बंध हो। इसके लिए वह मार्ग में आने वाले परीषहों और उपसर्गों को समता भाव से सहन करने का प्रयास करता है।

इतनी बड़ी साधना को अव्याबाध रूप से सम्पन्न कराने के लिए, धर्मग्रन्थों में उसकी प्रायः प्रत्येक क्रिया के लिए आवश्यक नियमों एवं मानकों का विधान रखा गया है। एक श्रमण को हर पल, सतत जागरूक रहकर, अपनी जीवनचर्या को चलाते समय उच्च कोटि का विवेक रखना होता है। तभी उसकी धर्माराधना निर्विघ्न रूप से सम्यक् श्रद्धा के साथ चल सकती है तथा अपने आत्म-ध्यान, विश्लेषण, शोधन और विकास में वांछित सफलता हासिल कर सकता है।

श्रमणाचार के नियमों में न केवल श्रमण की आवश्यकताओं को न्यूनतम रखा गया है, बल्कि ऐसे नियम बनाये गये हैं कि वे उसको सिंह प्रवृत्ति से, अपनी व्यवहारिक दिनचर्या को, फक्कड़ की तरह समभाव से चलाने में मार्गदर्शन दे व सहायता करे। इन कठिन नियमों की पूर्ण व्याख्या यानी पूरी आचार-संहिता तथा उनमें जाने-अनजाने में होने वाली विभिन्न प्रकार की स्खलनाओं के लिए प्रायश्चित्त आदि की व्यवस्थाओं को भी लिपिबद्ध रूप में उपलब्ध कराया गया है।

नियमों में परिवर्तन का मुद्दा

श्रमणों की यह आचार-संहिता भगवान महावीर के जमाने में, तत्कालीन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को ध्यान में रखते हुए बनाई गई थी। चूँकि एक श्रमण आखिरकार श्रावक समाज के बीच रहकर ही अपनी साधना करता है, उन्हीं के साथ उसकी पारस्परिक क्रियाएँ होती हैं, तो क्या श्रावकों के बदले हुए सामाजिक परिवेश में

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रमणाचार के नियमों में बदलाव करना, उचित है?

भगवान महावीर के बाद करीब 2300 वर्षों तक हमारे सामाजिक परिवेश और परिस्थितियों में विशेष बदलाव नहीं हुआ था। मात्र शायद इतना ही हुआ कि मनुष्य की शारीरिक और मानसिक सहनशक्ति में कुछ कमी आई हो। उसके ज्ञान-विकास की क्षमता में कुछ कमी आई हो। यह सब व्यक्तिगत स्तर पर हुआ है। अतः श्रमणों की विशुद्ध साधना के लिए बनाई गई नियमावली में तथा उसके आचार की पालना में कोई परिवर्तन करने की आवश्यकता नहीं हुई।

यह जरूर सुनने में आता है कि हर युग में कुछ साधक उन नियमों का कठोरता से पालन करने में पूर्णतः सफल नहीं हो पाते थे। अतः शिथिलाचार वाले साधु यदा-कदा मिल जाते थे। उनकी सामूहिक रूप से ज्यादा प्रतिष्ठा नहीं होती थी। लेकिन वे ही साधु जब संख्या में अधिक होकर आपस में जुड़ते, तो नियमावली को खतरा पैदा हो सकता था, लेकिन शायद ऐसा हुआ नहीं। हाँ, अर्वाचीन जमाने में यह जरूर देखने को मिलता है, कि कभी-कभी सामूहिक रूप से साधुओं ने अपनी पालना में ढिलाई को स्वीकार करके, या उसको शास्त्र सम्मत बता कर, अपनी साधना को दोष रहित नहीं रहने दिया। लेकिन समय-समय पर इन दोषों पर से अज्ञान का पर्दा हटाने वाले ज्ञानी और वीर श्रावक तथा साधक भी हुए हैं।

औद्योगिक क्रांति

पिछले करीब 200 वर्षों से हमारे सामाजिक परिवेश को विज्ञान व प्रौद्योगिकी ने अकल्पनीय रूप से बदल डाला है। औद्योगिक क्रांति ने हमारी व्यक्तिगत जीवन शैली और सामाजिक ढाँचे को आमूलचूल रूप से बदल दिया है। उस विकास के अनुरूप सामाजिक व पारिवारिक व्यवस्थाएँ भी बदल गई हैं। व्यक्ति- केन्द्रित छोटे परिवारों ने सम्मिलित परिवारों की जगह ले ली है। भौतिक जीवन की सुविधाओं और भोगवाद की प्रवृत्तियों में विज्ञान ने महत्त्वपूर्ण योगदान देकर उनको बदल दिया है।

यातायात- भौगोलिक दूरियाँ अब इतनी छोटी लगने लग गई हैं कि पूरा विश्व एक शहर के माफिक बन गया है। कुछ ही घंटों में बिना पैदल चले, महासमुद्रों को लांघकर अन्य महाद्वीपों पर लोग आ जा रहे हैं। दूरियों पर इस विजय के कारण, इस जेट युग में समय की बचत हुई है। इस कारण भौतिक समृद्धि में 'समय' का महत्त्व बढ़ गया है। लम्बे फासले तय करने के लिए अब पैदल चलने की या जानवरों को दौड़ाने की आवश्यकता समाप्त हो गई है। यातायात के साधनों के इस बेतहासा विकास के साथ-साथ विनिर्माण, उत्पादन और निर्माण क्षेत्रों में भी आशातीत विकास हुआ है। प्राचीन युग में जहाँ मनुष्य अपने काम में जानवरों की मदद लेकर अपने श्रम की बचत करता था, तो उन जानवरों के उपयोग के कुछ नियम बनाये गये थे। जिससे मनुष्य लोभवश, उन मूक जानवरों को अधिक कष्ट न दे। अर्वाचीन जमाने में उन जानवरों का स्थान नई मशीनों ने ले लिया है। ये मानव निर्मित मशीनें दैत्यों की तरह बलवान हो सकती हैं, तथा एक-एक मशीन हजारों जानवरों का काम कर सकती है। इस प्रकार जानवरों को भी काम से छुट्टी मिल गई, यानी प्राणातिपात दोष का निमित्त ही कम हो गया या हट गया है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आधुनिक सूचना तंत्र

पिछले दशकों में सूचना तंत्र और संचार व्यवस्था में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। आपसी सूचनाओं का आदान-प्रदान करने में भौगोलिक दूरियाँ बेमानी हो गई हैं। इससे 'शंका समाधान' में होने वाले विलम्ब एवं आ रही कठिनाइयाँ समाप्त हो गई हैं। क्योंकि इसके लिए किसी को चलकर जाने की आवश्यकता नहीं है तथा लिखित पत्रों की अस्पष्ट भावनाएँ अब रोड़े नहीं बन सकती। रूबरू आपस में बात करिये, उनके आशय और भाव को समझिये। यह सम्भव हो चुका है। ज्ञान के विलुप्त होने के, दुष्काल आदि कारणों का प्रभाव भी क्षीण हो गया है। मोबाइल क्रांति का प्रभाव और गहरा होता जा रहा है।

प्राचीन काल में दूरियों के कारण तथा अविकसित संचार व्यवस्था के कारण श्रमणों की आपसी समझ में, समयान्तर में बदलाव आ जाता था। अतः समझ की एकरूपता रखने के लिए समय-समय पर सम्मेलन बुलाने पड़ते थे। इस कठिनाई या समस्या से निजात पाने के लिए उस ज्ञान को कालान्तर में लिपिबद्ध कर देने से, ज्ञान की एकरूपता रखने में मदद मिली। उसके बाद हस्तलिखित ग्रंथों का प्रचलन बढ़ा, लेकिन वह बहुत श्रमसाध्य था। अब मशीनों के आ जाने के बाद ग्रंथों का प्रकाशन बढ़ गया। इसके अलावा अब श्रमणों द्वारा रचित व्याख्याएँ तथा व्याख्यान, पत्र-पत्रिकाओं द्वारा तीव्र गति से प्रसारित हो जाते हैं। अब तो इन्टरनेट, कम्प्यूटर और टी.वी. द्वारा उनके विचारों का, व्याख्यानों का सीधा प्रसारण हो जाता है। एक श्रमण के व्याख्यान को एक साथ लाखों घरों में बैठे-बैठे सुन सकते हैं, देख सकते हैं।

ज्ञान-भंडार

ज्ञान भंडारों का स्वरूप बदल गया है। हस्तलिखित ग्रंथों का दायरा और उपयोगिता काफी सीमित थी। अब उनको डिजिटलाइज करके पूरे विश्व में उपलब्ध कराया जा सकता है। घरों में ही इन्टरनेट पर पूरा ज्ञान भण्डार उपलब्ध हो सकता है। शोधकर्ताओं को विश्व के किसी भी ज्ञान भण्डार की पुस्तकों का साहित्य उपलब्ध कराया जा सकता है। शोध का पूरा परिप्रेक्ष्य बदल गया है।

शिक्षा- पढ़ाई के साधनों तथा ज्ञान-प्राप्ति के संसाधनों में भी उसी प्रकार आशातीत वृद्धि हुई है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली की सुविधाएँ बढ़ गई हैं। एक क्लिक करते ही ग्रंथों की सभी सूचनाएँ या व्याख्याएँ मिल जाती हैं। इस सूचना क्रांति से लगता है कि साधुओं एवं ज्ञान-भंडारों की भूमिका ही बदल गयी है।

भाषाएँ

आजकल विभिन्न भाषाओं का आपसी अनुवाद आसानी से मशीनों द्वारा उपलब्ध कराया जा सकता है। इसके चलते भाषाविदों को अब अनुवाद करने में ज्यादा समय नहीं लगाना पड़ता है।

निचोड़ रूप में कहा जा सकता है कि धर्म के व्यापक प्रचार, प्रसार और सत्संग में, संचार, सूचना और यातायात के क्रांतिकारी बदलाव के कारण, सामाजिक, आर्थिक परिवेश में आमूल-चूल परिवर्तन हो गया है। मोटे तौर पर इस बदले परिप्रेक्ष्य में 'श्रमणाचार' का भी प्रासंगिक होना अति-आवश्यक दिखाई देता है।

इनके कुछ नियमों की प्रासंगिकता पर विचार करते हैं।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

पदयात्रा और उसकी महत्ता

यह श्रमणाचार का एक मुख्य नियम है। श्रमणलोग पद विहारी होते हैं और वाहनों का उपयोग नहीं कर सकते। यहाँ तक कि साधारणतया दूसरों द्वारा चालित साइकिल रिक्शा का भी। उन्हें तो पदयात्रा द्वारा गाँव से गाँव विचरण करते रहना है। ये यात्राएँ भी ईर्या समिति की साधना के तहत होती हैं। यानी यात्राएँ भी यतना पूर्वक करनी हैं। इन यात्राओं से एक श्रमण जमीन से जुड़ा रहता है।

दूर-दूर जाकर या विदेशों में जाकर धर्म-प्रचार का लोभ संवरण न कर सकने के कारण, उन्हें हिंसा आदि का दोष लगता ही है। उनका अहिंसा महाव्रत स्खलित होता है। वाहन का उपयोग अपवाद स्वरूप, पूर्व में भी जरूर हुआ है, लेकिन उन श्रमणों ने इसका प्रायश्चित्त लेकर विशुद्धि भी की है। यानी वाहनों का धडल्ले से उपयोग करना श्रमणाचार के विरुद्ध है।

जिन श्रमणों ने इस नियम को ताक पर रखकर, धर्म-प्रचार व प्रसार को प्राथमिकता दी है, उनका महाव्रत तो स्खलित हुआ ही है। उनका तर्क कि विदेशों में धर्म-प्रभावना या धर्म प्रचार में व्यापकता लाकर, उस पाप कर्म को पुण्य अर्जन से संतुलित कर दिया है, तो उन्हें अपने भावों में उन एकेन्द्रिय जीवों के प्रति सूखे हुए करुणा स्रोत पर भी नज़र डालनी चाहिए। वे उन जीवों के रक्षक बनकर क्यों भक्षक बन गये? हिंसा तो हिंसा ही है। यदि कोई श्रमण अपने महाव्रत में स्खलित होता है, तो वह उस श्रावक से पूज्य नहीं हो सकता जो एक छोटा अणुव्रत लेकर भी उसका दृढ़ता से पालन करता है।

यह भी ध्यान देने की बात है कि प्रायश्चित्त द्वारा केवल अपवाद स्वरूप स्खलना की विशुद्धि होती है। अपवाद तो अपवाद ही रहने चाहिए। श्रमण का मूल उद्देश्य तो स्व कल्याण है। पर कल्याण तो गौण उद्देश्य है। उसी उद्देश्यपूर्ति के लिए श्रमणाचार के नियम बनाये गये हैं। अपवाद की पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए।

कई श्रमणों ने अन्य तर्क परोसकर, वाहन प्रयोग को प्रासंगिक सिद्ध करने की कोशिश की है, जो अनुचित है।

लेखन और संचार व्यवस्था

कहते हैं कि क्षमाश्रमण देवर्धिगणी ने हस्त लेखन द्वारा जो आगमों को पहली बार लिपिबद्ध कराया, तो इस क्रिया को अपवाद मानकर प्रायश्चित्त लिया गया था। उन्होंने जब देखा कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के प्रभाव से स्मरण शक्ति कमजोर होती जा रही है, तो जिनवाणी को सुरक्षित रखने के लिए उसे सही रूप में लिपिबद्ध कराया। उसमें हुए हिंसा-दोष को प्रायश्चित्त लेकर धो डाला। लेकिन आज परिस्थितियाँ बदल गई हैं। अब प्रायः हर साधु लेखन का कार्य करता है। कुछ अपने संघ की (साधु-संघ) व्यवस्था के लिए, तो कुछ उससे आगे बढ़कर लेखन का, किताबें लिखने का कार्य भी करते हैं। हो सकता है कि किसी पक्ष को आवश्यक मानकर, विवेकपूर्वक न्यूनतम दर्जेपर रहते हुए वे उस कार्य को कर रहे हों। डायरियाँ रखते हैं, अपने लिखने के लिए। स्मृति को सहारा देने के लिए। अब हस्तलेखन सम्बन्धी देवर्धिगणिजी जैसा अपवाद, अपवाद ही नहीं रहा। वह तो चर्या बन गया है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

विवेक के सूत्र

लेखन कार्य को अपने-अपने विवेक द्वारा सत्साहित्य के सृजन के लिए सीमित रखने का प्रयत्न किया जाता है। ''पण्णा सम्मिक्खयाए'' का सहारा लेकर, देवर्धिगणी के जमाने के अपवाद को अब प्रासंगिकता का जामा पहना दिया जाता है। इसी व्यामोह में अपने विवेक की सीमाएँ आगे बढ़ा कर, उस लेखन को मशीनों से छपवाने को भी अपवाद नहीं समझा जाता है। हो सकता है कि कुछ श्रमण इस क्रिया के लगने पर प्रायश्चित्त कर लेते हैं। कुछ श्रमण अभी भी लेखन को छपवाना बाधित रखते हैं। अन्यों का तर्क रहता है 'कम हिंसा, ज्यादा जिनवाणी रक्षा''। इसी तर्क के सहारे अब 18वीं शताब्दी की छपाई की मशीनों से आगे बढ़ते हुए, 21 वीं शताब्दी में कम्प्यूटर और प्रिंटर का उपयोग करने की आवश्यकता महसूस हो रही है। हालांकि इनका उपयोग आज श्रमण आज्ञा लेकर भी स्वयं नहीं करते हैं, लेकिन हो सकता है कि भविष्य में इनके तथा मोबाइल के उपयोग में खुद को लगा लें। इसके लिए विद्युतकाय के जीवों को जीव नहीं मानने का प्रयास जारी है। लेकिन एक अपरिग्रही श्रमण को विवेकपूर्वक विचार करना है कि 'आचारांग' की व्यवस्था में छूट की सीमा कहाँ निर्धारित करें? समझदारों को अपनी अहिंसक और करुणामय भावना से सोचना है।

प्रश्न यह है कि यह काम एक अणुव्रतधारी गृहस्थ करे या यह एक महाव्रतधारी श्रमण? क्या साधु ही ज्ञान का ठेका लेकर प्रचार-प्रसार करे या अणुव्रत धारी भी ज्ञानी बनकर अपनी मर्यादा में रहते हुए, आधुनिक संचार- व्यवस्था का सदुपयोग करे? श्रमणाचार की सम्यक् साधना की ठोस सीमाओं के कारण, जिम्मा निश्चय ही एक श्रमण का नहीं हो सकता है।

बिजली का उपयोग

अपने व्याख्यान की पहुँच बढ़ाने के उद्देश्य से कुछ श्रमण लोग ध्वनिवर्धक यंत्र और दूरदर्शन का उपयोग करना प्रासंगिक मानते हैं। तेजस्कायिक जीवों की हिंसा से परहेज करने की मानसिकता ही समाप्त हो गई है। यहाँ तक कि कुछ अधपक्के तर्कों द्वारा वे यह सिद्ध करने का प्रयास कर रहे हैं कि विद्युत कायिक जीवों का अस्तित्व ही नहीं होता है। विद्युत तो एक भौतिक ऊर्जा मात्र है। टी.वी. के माध्यम से उनके प्रवचन, जैन धर्म के संदेश आज विश्व के कोने-कोने में जा रहे हैं। इस तरह वे धर्म प्रसार व प्रचार की महान सेवा कर रहे हैं। इसके विपरीत कुछ श्रमण वर्ग विद्युत कायिक जीवों की करुणा पूर्वक रक्षा करने के मुद्दे को अपने आचार का मुख्य विषय मानते हैं। टी.वी. द्वारा पर-कल्याण के उपदेश का प्रसार, उनके लिए गौण मुद्दा है। वे स्व कल्याण को ही मुख्य मानते हैं। आज की सुविधा के अनुसार, इस प्रकार जीव हिंसा को गौण कर देना विवेकशून्य और अप्रासंगिक है। हिंसा और अहिंसा का मुद्दा, आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों के उपयोग में अपनी कितनी प्रासंगिकता रखता है, यह स्व-पर कल्याण के मुद्दे से तो जुड़ा ही है, साथ में श्रमण विशेष की करुणा के भाव से भी जुड़ा हुआ होना चाहिए।

यदि फायदे-नुकसान का विश्लेषण करना ही है, तो विवेक का तकाजा है कि इसे अणुव्रतधारियों के दायरे में रखा जाय, न कि महाव्रतधारियों के दायरे में। क्योंकि अहिंसा महाव्रत के मुद्दे को 'आयतुले पयासु' की

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

समझ से ही समझा जा सकता है। उसे छींके पर लटका कर गौण नहीं किया जा सकता है।

आधुनिक सामाजिक-व्यवस्था में भी शुद्ध आचार की महत्ता पूर्ववत् ही समझ में आती है, खासकर महाव्रतधारियों के लिए। लेकिन प्रचार-प्रसार व प्रभाव की प्रबल और अकल्पनीय सम्भावनाओं के चलते, श्रमणों पर उन उपकरणों के उपयोग के लिए मानसिक व सामाजिक दबाव भी बढ़ रहा है। साधारण श्रमणों के लिए, उस दबाव को झेलना दुष्कर हो रहा होगा। जिन्होंने अपने कदम उधर बढ़ा दिये, उनके लिए राष्ट्रीय सम्मान, राजकीय संरक्षण और धर्म सभाओं में विशाल जन मेदिनी उनकीं सफलता का मापदण्ड बन जाती है। हो सकता है, इन बाह्य उपलब्धियों में, वे अनासक्त भाव से जीते हों, लेकिन मिथ्यात्व के पोषण की सम्भावनाओं से इन्कार नहीं किया जा सकता है।

अतः आज के परिप्रेक्ष्य में भी श्रमणों से महाव्रत की अखण्डता की ही अपेक्षा रहती है। नये संसाधनों को धर्म प्रचार में लगाने के लिए तो ऊपर सुझाये हुए एक नये विशिष्ट श्रावक वर्ग की ही आवश्यकता है। कुछ आचार्यों ने तो ऐसा वर्ग (समण) तैयार भी कर लिया है। क्योंकि श्रुत धर्म और चारित्र धर्म को अंगीकार करने वाले श्रमणों से अपेक्षाएँ भिन्न प्रकार की होती हैं। अतःनये समण वर्ग को अधिक विकसित करने की आवश्यकता है।

किसी ने ठीक ही कहा है कि आजकल धर्मगुरु कहलाने वाले श्रमण सामाजिक सेवा, शिक्षा और रुग्ण सेवा के नाम पर ग्राहकों/शिष्यों की भक्ति बटोर कर, स्वयं भक्तों के संग धर्म की मीठी शराब के नशे में रहते हैं तथा स्वर्ग/मोक्ष का लाभ बताकर, सुखसीलिया बनकर भी अपने आपको अनासक्त बताते रहते हैं। उनका कषाय मुक्त हो पाना असम्भव लगता है।

आत्मधर्म को स्वीकार करके उसका प्रासंगिकता के नाम पर उल्लंघन करके विघातक बनना तो अपने को धोखा देना है।

हालांकि आज भी कई ईमानदार और प्रामाणिक श्रमण विद्यमान हैं, जो 'अहिंसा महाव्रत' का पूर्णतः पालन करने का प्रयास करते हैं। उनका आचरण, तप, त्याग, आदि चौथे आरे की बानगी के समकक्ष लगता है। आडम्बर और परिग्रहों से दूर रहकर अभी भी स्वयं श्रम करते हुए वे फक्कड़ की तरह निर्दोष धर्मपालना करते हैं। उनके यहाँ भी ज्ञानी भक्तों की भीड़ लगती है, लेकिन एक सादगी के माहौल में।

श्रमण की गोचरी

एकल परिवारों के चलते श्रमणों को समाज में गोचरी के लिए बहुत कष्ट सहने पड़ते हैं। इस व्यवस्था में प्रासुक (अचित्त) और एषणीय (निर्दोष) आहार-पानी मिलना अति दुष्कर हो गया है। परिवारों के खान-पान के पदार्थ ही नहीं बदल गये हैं, बल्कि भोजन का समय भी बदल गया है। दोपहर का भोजन दो बजे यदि तैयार होता है, तो साधु लोग अपनी दिनचर्या कैसे निभायेंगे?

ऐसी परिवर्तित आधुनिक भोजन-व्यवस्था की कठिनाइयों से छुटकारा पाने के लिए, कुछ संघों ने कम से कम अचित्त-पानी के उपयोग के बारे में एक अभियान चलाया है, जो बहुत ही समसामयिक है। विस्मृत

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

जीवन शैली को पुनर्जीवित करने से अब कुछ श्रावकों के घरों में पुनः प्रासुक धोवन की उपलब्धता शुरू हुई है। प्रासुक पानी की उपलब्धता, श्रमण वर्ग के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण है। बिना आहार के रह जाना, श्रमणों के लिए भयंकर समस्या नहीं मानी जाती है। लेकिन बिना प्रासुक पानी के तो उनका जीवन ही संकट में पड़ जाता है। धोवन की अनुपलब्धता के मद्दे नजर तो कुछ श्रमणों ने बोतल-बंद पानी (मिनरल पानी) को प्रासुक घोषित कर दिया था। इससे साधुओं की कठिनाइयाँ काफी हद तक दूर हो गई हैं। लेकिन हमारे नये प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि मिनरल पानी प्रासुक नहीं होता है, भले ही वह बैक्टेरिया शून्य क्यों न हो। अतः मिनरल पानी के मिथ्या प्रचार से बचना चाहिए। आगम और विज्ञान सम्मत तो श्रावक का यही आचरण शुद्ध है कि घर-घर में धोवन पानी का उपयोग बढ़े।

जब शुद्ध पालना वाले और क्षीण कषाय वाले श्रमण व्याख्यान फरमाते हैं, तो उनका प्रभाव भी ज्यादा गहरा होता है। कहा भी गया है कि प्रकाश का मार्ग बताने वालों को पहले स्वयं को अंधेरों से बाहर आना होगा। फिर भी नये समण वर्ग को आज के परिप्रेक्ष्य में बहुत सारी प्रचार-प्रसार की जिम्मेदारियाँ सौंपी जा सकती हैं।

इस प्रकार आज के जमाने में शुद्ध आगम-सम्मत श्रमणाचार की उपयोगिता अधिक बढ़ गई है। उसको सम्यक् रूप से पालने में जो बाधाएँ दृष्टिगोचर हो रही हैं, उनको दूर करने के लिए व्रतधारी श्रावकों को आगे आकर, समुचित धर्म दलाली का पुण्य अर्जन करते रहना चाहिए। दृढ़ श्रावक समाज ही, श्रमणों के आचांर को शुद्ध रखने में सहायक हो सकता है। और शुद्ध श्रमणाचार ही श्रावक के आगार धर्म का आदर्श और प्रभावी संबल होता है। उसी से अध्यात्म और नैतिक नेतृत्व की सही दिशा मिलती है। इसी से संघ की कीर्ति बढ़ती है।

ऐसा समझ में आता है कि आगम-सम्मत मूल लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जो वैज्ञानिक ढंग से श्रमणों की आचार-संहिता बनाई गई थी, वह आज भी तर्क संगत, व्यावहारिक और प्रासंगिक है। उसकी वैज्ञानिकता को समझते हुए, श्रावक संघ को यह प्रयास करना चाहिए कि उसकी पालना में जो-जो बाधाएँ दिखाई दे रही हैं, उनका सरल निराकरण किया जाय। आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य में हमारे समाज की बढ़ती आवश्यकताओं और सम्भावनाओं की पूर्ति के लिए एक नये श्रावक वर्ग का व्यापक संगठन अपेक्षित है, जो श्रावक और श्रमण के बीच की कड़ी के रूप में कार्य करते हुए आधुनिक वाहनों, दूर संचार आदि के नये साधनों और तकनीकियों का समुचित उपयोग करने के लिए सीमित स्वतंत्रता रखता हो।

-कमानी सेन्टर, द्वितीय माला, बिस्टापुर, जमशेदपुर- 831001

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org